प्रथम संस्करण : ५,०००
दिनांक २० अप्रेल, १९७७

# प्रकाशकीय

# अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. अंतर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी : कानजी स्वामी ५
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

२. पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी और
उनका जीवन-दर्शन १५
श्री युगलकिशोर 'युगल', कोटा

३. चैतन्य चमत्कार : एक इन्टरव्यू कानजी स्वामी से ४३
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

४. जनमानस की दृष्टि में : पूज्य श्री कानजी स्वामी ५२
पं० रतनचन्द भारिल्ल, विदिशा

५. सम्यग्ज्ञानदीपिका : एक और इन्टरव्यू
कानजी स्वामी से ७२
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

६. भगवान महावीर और उनके अनुयायी
युगपुरुष श्री कानजी स्वामी ८५
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

७. पू० श्री कानजी स्वामी : मूल्यांकन और
उपलब्धियाँ ९४
श्री नेमीचंद पाटनी, आगरा

८. तूफान ११७
श्री युगलकिशोर 'युगल', कोटा

वहाँ तो एक ही बात है और वह भी – पर और शरीर से भिन्न केवल आत्मा की। गिरगिट का सा रंग बदलने वाले तथाकथित आध्यात्मिक प्रवक्ताओं के समान 'अन्दर कुछ और बाहर कुछ' – वाली बात उनमें आप कभी नहीं पायेंगे।

उनकी वाणी में किसी का विरोध नहीं आता, मात्र अपना अविरोध झरता है। वे अपनी बात, अनुभव की बात, आगम की बात अपने तरीके से सबके सामने रखते हैं। कौन क्या गलत कह रहा है, गलत कर रहा है; यह जानने के लिए, सुनने के लिए, कहने के लिए उनके पास समय नहीं है; सत्य का अनुभव करने और निरूपण करने से अवकाश मिले तब तो यह सब किया जाय। यह तो उनका काम है, जिन्हें सत्य से कोई सरोकार नहीं है, धर्म जिनका धन्धा है। धर्म को जीवन मानने वाले स्वामीजी इन सब बातों से बहुत दूर हैं।

यदि आत्मज्ञान का नाम ही अध्यात्म है तो स्वामीजी सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक सत्पुरुष हैं क्योंकि उनका चिन्तन, मनन, कथन, अनुभवन सब कुछ आत्मामय है। अधि=जानना, आत्म=आत्मा को – इस प्रकार अपने आत्मा को जानना ही अध्यात्म हुआ। अध्यात्म की उक्त परिभाषा पू० स्वामी जी पर पूरी तरह घटित होती है।

पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग कलिकाल में सहज संभव नहीं है। जिनके जीवन में पवित्रता पाई जाती है कोई उनकी बात नहीं सुनता और जिनके समक्ष लाखों मानव झुकते हैं, जिनको सर्व सुविधाएँ सहज

उपलब्ध हैं, वे पवित्रता से बहुत दूर दिखाई देते हैं – जैसे पावनता से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो, उन्हें पवित्रता से कोई सरोकार नहीं। स्वामीजी एक ऐसे युग-पुरुष हैं जिनमें पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग है। उनमें सोना सुगंधित हो उठा है।

वे अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष हैं। एक ओर जहाँ स्वच्छ शुभ्र श्वेत परिधान से सर्वांग ढ़की एकदम गोरी-भूरी विराट काया, उस पर उगते हुए सूर्य-सा प्रभा-सम्पन्न उन्नत भाल, तथा कभी अन्तर्मग्न गुरुगंभीर एवं कभी अन्तर की उठी आनन्द हिलोर से खिलखिलाता गुलाब के विकसित पुष्प सदृश ब्रह्मतेज से दैदीप्यमान मुखमण्डल – व्याख्यान में उनकी वाणी से कुछ भी न समझ पाने वाले हजारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किए रहता है; वहीं दूसरी ओर स्वभाव से सरल, संसार से उदास, धुन के धनी, निरन्तर आत्मानुभव एवं स्वाध्याय में मग्न, सब के प्रति समताभाव एवं करुणाभाव रखने वाले, विनम्र पर सिद्धान्तों की कीमत पर कभी न झुकने वाले, अत्यन्त निस्पृही एवं दृढ़ मनस्वी, गणधर जैसे विवेक के धनी, वज्र से भी कठोर, पुष्प से भी कोमल उनका आन्तरिक व्यक्तित्व बड़े-बड़े मनीषियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहता है।

काठियावाड़ (आधुनिक गुजरात) की मिट्टी में ही न मालूम ऐसी क्या विशेषता है जिसने एक ही शताब्दी में ऐसे दो महापुरुषों को जन्म दिया है जिन्होंने लौकिक और पारलौकिक दोनों क्षितिजों के छोर पा लिए हैं।

[illegible] में महात्मा गांधी और हुए हैं कानजी स्वामी। एक ने हमें लौकिक स्वतंत्रता का मार्ग ही नहीं दिखाया, अपितु स्वतंत्रता भी प्रदान की है। दूसरा हमें पारलौकिक, अलौकिक, आध्यात्मिक स्वतंत्रता का पथ प्रदर्शन कर रहा है, स्वयं उस पर चल रहा है, दूसरों को चलने का प्रेरणा-स्रोत बन रहा है। एक साबरमती का संत कहा जाता था तो दूसरा सोनगढ़ का संत कहा जाता है।

एक बार इन दोनों महात्माओं का मिलन भी हुआ था, जब गांधीजी राजकोट में स्वामीजी के प्रवचन में पधारे थे।

सोनगढ़ आज तीर्थधाम बन गया है। जहाँ-जहाँ सन्तों के पग पड़ते हैं, वे स्थान तीर्थधाम बन जाते हैं। सोनगढ़ क्यों न तीर्थधाम बने? वहाँ तो आध्यात्मिक सत्पुरुष चालीस वर्ष से आत्म-साधना कर रहे हैं। आत्म-साधना और आत्म-आराधना का पथ प्रशस्त कर रहे हैं।

आज ऐसा कौन जैन है जो गिरनार और शत्रुंजय (पालीताना) गया हो और सोनगढ़ न गया हो तथा वहाँ पर पहुँच कर भव्य मानस्तंभ, विशाल जिन मन्दिर, सुन्दर समवशरण मंदिर एवं नवनिर्मित अद्वितीय परमागम मंदिर के दर्शन कर कृतार्थ न हुआ हो; जिसने शहरी कोलाहल से दूर, शान्त और निर्जन इस प्रान्त में आत्मा के नांद की गूंज न सुनी हो एवं रंग-राग और भेद से भिन्न आत्मा की बात जिसके कान में न पड़ी हो।

आज सोनगढ़, समयसार और कानजी स्वामी पर्यायवाची हो गये हैं। सोनगढ़ में कुन्दकुन्दाचार्य के पंच

परमागमों को परमागम मंदिर में संगमरमर के पाटियों पर उत्कीर्ण करा दिया गया है। सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य का इससे बड़ा स्मारक और क्या होगा ? पर कानजी स्वामी तो कुन्दकुन्द और उनके समयसार के जीवन्तस्मारक हैं। क्यों न हों ? समयसार ने उनके जीवन को जो बदल डाला है।

समयसार पाकर उन्होंने क्या नहीं पाया, क्या नहीं छोड़ा ? सर्वस्व पाया और सर्वस्व छोड़ा। श्रीमद् रायचन्द्र ने समयसार लाकर देने को खोवा भर मुद्रायें दी थीं, पर कानजी स्वामी ने तो उसके लिये परम्परागत धार्मिक सम्प्रदाय ही नहीं; उसका गुरुत्व, गौरवपूर्ण जीवन, यश – यहाँ तक कि प्राणों तक का मोह भी छोड़ा।

वे प्राणों की बाजी लगाकर, प्राणों की कीमत पर दिगम्बर जैन हुए हैं। दिगम्बरों ने उन्हें क्या दिया ? यदि दिगम्बरों ने उन्हें समयसार दिया, मोक्षमार्ग प्रकाशक दिया तो उन्होंने दिगम्बरों को समयसार का सार और मोक्षमार्ग प्रकाशक का मर्म दिया है। यदि उन्हें दिगम्बरों से एक समयसार मिला, एक मोक्षमार्ग प्रकाशक मिला तो उन्होंने समयसार और मोक्षमार्ग प्रकाशक दिगम्बरों के घर-घर तक पहुँचा दिया है।

कौन जानता था कि काठियावाड़ के छोटे से ग्राम उमराला में आज से ८७ वर्ष पूर्व वि० सं० १९४७ (गुजराती १९४६) की वैसाख सुदी २ रविवार के दिन जन्मा बालक कहान इतना महान् होगा।

[illegible] वि० सं० १९[illegible] में समयसार [illegible] लगा, मानो निधि मिल गई। [illegible] लिया। [illegible] उसके पढ़ने में ऐसे मग्न हो गये कि [illegible] ही न रहा।

उनका अन्तर पुकार उठा कि 'सच्चा पंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर ही है' पर…………। फिर वि० सं० १९८२ में मोक्षमार्ग प्रकाशक हाथ लगा। यह ग्रन्थ भी स्वामीजी को अपूर्व लगा, यह ग्रन्थराज अपूर्व है भी। यह उनको इतना मन भाया कि इसका सातवाँ अध्याय तो उन्होंने अपने हाथ से लिख लिया, जो आज भी सुरक्षित है।

यह अन्तर्बाह्य का संघर्ष वि० सं० १९९१ तक चलता रहा। आखिरकार इस नरसिंह ने उसी वर्ष चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को साधारण गाँव सोनगढ़ में बाड़ा तोड़ ही डाला, मुंहपट्टी उतार फेंकी और अपने को दिगम्बर श्रावक घोषित कर दिया। क्या ही विचित्र संयोग है कि यह शुभकार्य महावीर जयन्ती के शुभ दिन ही संपन्न हुआ।

इस परिवर्तन से संप्रदाय में खलबली मच गई। चारों ओर से भय और प्रलोभनों के पासे फेंके गये, पर सब बेकार साबित हुए। धर्मान्धों ने क्या नहीं कहा और क्या नहीं किया, पर "मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःख सुःखं।" – की नीति का अनुसरण करते हुए स्वामीजी अडिग रहे।

कुछ दिनों तक वे सोनगढ़ के समीप टेकड़ी पर स्थित एक अनन्य अनुयायी के टूटे-फूटे मकान में रहे, जो आज

भी उसी हालत में विद्यमान है और जिसे गुरुदेव स्वयं कभी-कभी अपने अनुयायियों को बड़े ही प्रेम से उँगली के इशारे से दिखाया करते हैं।

साम्प्रदायिकता के मोह में हो गये विरोधियों की कषाय जब शान्त होने लगी तो वे पुण्य और पवित्रता के धनी गुरुदेव के दर्शनार्थ झुंड के झुंड आने लगे। कुछ यह देखने भी आते थे कि अब कैसा क्या चल रहा है ? पर उनके समक्ष आकर, उनके आचरण व व्यवहार को देख एवं अभूतपूर्व प्रवचनों को सुनकर नत-मस्तक हुए बिना नहीं रहते।

कुछ समय बाद जन्मजात दिगम्बर जैन भी उनके पास पहुँचने लगे। कुछ प्रेम से, कुछ भक्ति से, कुछ कुतूहल से; पर जो भी उनके पास पहुंचता, उनका हुए बिना नहीं रहता, उनके अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उनकी वाणी में तो कुन्दकुन्द के अमृत का जादू है ही, पर उनका बाह्य व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं है।

उनके इस आध्यात्मिक आकर्षण से विरोधी खेमों में खलबली-सी मच गई जो आज भी देखी जा सकती है। 'जो वहाँ जायगा उनका हो जायगा' इस भय से आशंकित और आतंकित होकर वहाँ न जाने की लोगों को प्रतिज्ञाएँ दिलाई जाने लगीं, पर तूफान को कौन रोक सकता है ? अमर गायक कवि 'युगल' की "लो रोको तूफान चला रे, पाखण्डों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।" — यह पंक्तियाँ आज भी चुनौती दे रही हैं।

आध्यात्मिक क्रान्ति का यह सूत्रधार माना [illegible] भी जाता है, विरोधी भी उनका स्मरण करते हैं, सम्मान करते हैं, अभिनन्दन करते हैं। [illegible] सारे भारत की सघन यात्राएँ की हैं इस महापुरुष ने। पचासों से अधिक विशाल जिन-मन्दिरों का निर्माण हुआ है इसकी पावन प्रेरणा से। बीस लाख से ऊपर साहित्य भी प्रकाशित हुआ है इसकी कृपा से। गाँव-गाँव में तत्त्व-चर्चा के केन्द्र स्थापित हो गये हैं। छोटे-छोटे से गाँवों में आप सामान्य व्यापारियों को निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान की चर्चा करते पायेंगे। यह सब इस महामानव का ही प्रभाव है कि जिसने आज के इस भौतिकतावादी युग में आध्यात्मिक वातावरण बना दिया है।

वे इस युग के अद्वितीय महापुरुष हैं। ऐसा कोई दूसरा महापुरुष बताएँ जिसने इनके समान अनंत प्रशंसाओं और निन्दाओं का आज तक उत्तर भी न दिया हो और जो जगत् की प्रशंसा और निन्दा से इनके समान अप्रभावित रहकर अपनी गति से ही चलता रहा हो, जिसने समय (शुद्धात्मा) और समय (टाइम) की ऐसी साधना की हो कि जिसमें समयसार प्रतिबिम्बित हो उठा हो और लोग जिसकी दिनचर्या से अपनी घड़ियाँ मिला लेते हों।

उस अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी एवं आध्यात्मिक साधनारत महापुरुष को शतशत प्रणाम।

# पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी
## एवम्
# उनका जीवन दर्शन

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी इस युग के एक महान् एवं असाधारण व्यक्तित्व हैं। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयं-बुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसंधान किया एवं अपने प्रचंड पौरुष से जीवन में उसे आत्मसात् किया। इस जीवन में शुद्ध अन्तस्तत्त्व की देशना के लिए उन्हें किन्हीं गुरु का योग नहीं मिला फिर भी उन्होंने तत्त्व को पा लिया, क्योंकि सद्गुरु की देशना को वे इस जीवन से पूर्व ही उपलब्ध कर चुके थे। पूर्व-देशना से प्राप्त उनका तत्त्वज्ञान इतना परिपूर्ण एवं परिमार्जित था कि वह इस भवांतर तक भी उनके साथ रहा और उसी ने उन्हें आलोक दिया। उन्होंने तो आगम की नैसर्गिक पद्धति में तत्त्व को उपलब्ध कर ही लिया, किन्तु मेरी कल्पना यह है कि इस युग में अंतस्तत्त्व के बोध के लिए यदि वे किसी को अपना गुरु स्वीकार कर भी लेते तो भी उन्हें तत्त्व की उपलब्धि संभवित नहीं थी; क्योंकि उस समय यह तत्त्व प्रायः अभावग्रस्त था। यहाँ तक कि जीवन के सहज क्रम में जो दीक्षा-गुरु उन्हें मिले थे,

तरह की भोग एवं [illegible] भी उन्हें छोड़ना पड़ा।

सौराष्ट्र के उमराला ग्राम में जन्मे उजमबा एवं मोती के ये लाल बाल्य से ही विरक्त चित्त थे और एकमात्र ज्ञान एवं वैराग्य के प्रकरण ही उन्हें पसन्द थे। अपनी उदात्त लोकोत्तर आकांक्षाओं के समक्ष उन्हें कामिनी का माधुर्य पराजित नहीं कर सका; फलस्वरूप किसी भी मूल्य पर वे उसे जीवन में स्वीकार करने को सहमत नहीं हुए। अन्तर में भोगों से विरक्ति बढ़ती ही गई और अन्त में २४ वर्ष की भरी जवानी में वे स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। दीक्षा के नियमानुसार घर-बार, कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति सब छूट ही गये और दीक्षा के आचार का भी दृढ़ता से पालन होने लगा, किन्तु शान्ति की हूक शान्त नहीं हुई; शोध की प्रेरणा प्रशान्त नहीं हुई और अन्तर्द्वन्द्व चलता ही रहा। अतः अधिक समय तक वह प्रतिबन्ध सह्य न हो सका और एक दिन (वि० सं० १९९१) मस्त मतंग की तरह उसे भी छोड़ कर चल दिये एवं तत्त्व की मस्ती में घूमते श्री कानजी स्वामी का स्वर्णपुरी (सोनगढ़) सहज ही विश्राम-स्थल बन गया।

श्री कानजी स्वामी के जीवन का यह स्थल सर्वाधिक मार्मिक, स्तुत्य, लोक-मांगल्यकारी एवं वरेण्य है जहाँ उन्होंने जीवन के सब से भयंकर शत्रु मताग्रह को खुली चुनौती दी और अन्त में विजयी हुए। जीवन में गृह-कुटुम्ब, कंचन-कामिनी, पद एवं प्रतिष्ठा—सभी कुछ तो छूट

जाते हैं; किन्तु महान् से महान् ऋषि, मुनि एवं मनीषियों का बौद्धिक धरातल इस मताग्रह के प्रचंड पाश से मुक्त नहीं हो पाता। फलस्वरूप दृष्टि निष्पक्ष नहीं हो पाती और असंख्य प्रयत्नों में भी सत्य आत्मसात् नहीं होता।

श्री कानजी स्वामी इस युग के एक शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्तिदृष्टा पुरुष हैं। उन्होंने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया ऐसी क्रान्ति पहिले शताब्दियों में भी नहीं हुई। जैन-लोक-जीवन की श्वासें रूढ़ि, अन्ध-विश्वास, पाखंड एवं कोरे कर्मकांड की कारा में घुट रही थीं। इसके आगे धर्म कोई वस्तु ही नहीं रह गया था। इन महापुरुष ने शुद्ध जिनागम का मन्थन कर इन जीवन-विरोधी तत्त्वों को अधर्म घोषित किया और इस निकृष्ट युग में शुद्ध आत्म-धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा की। उन्होंने जन-जीवन को एक सूत्र दिया "स्वावलंबन अर्थात् निज शुद्ध चैतन्य-सत्ता का अवलम्बन ही धर्म है। परावलम्बन में धर्म अथवा शान्ति घोषित करने वाली सभी पद्धतियाँ अधर्म हैं, फलस्वरूप विश्वसनीय नहीं हैं।"

जिस समय भारत वसुधा पर पूज्य श्री कानजी स्वामी का अवतरण हुआ उस समय भी आध्यात्मिक चिंतन का रिवाज तो था किन्तु उस चिंतन में अध्यात्म नहीं था। आध्यात्मिक चिंतन का यह स्वरूप हो चला था कि आत्मा को कहा तो शुद्ध जाता था किन्तु वास्तव में माना अशुद्ध जाता था अथवा यदि शुद्ध माना भी जाता था तो आगम भाषा के दासत्व के कारण शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध माना जाता था और व्यवहारनय से अशुद्ध। इस तरह श्रद्धा

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
का गम्भीर अध्ययन कर उन आध्यात्मिक समस्या
सरलतम समाधान प्रस्तुत किया।

उन्होंने कहा – "विश्व के सभी जड़-चेतन पदार्थ स्वयं-सिद्ध, अनन्त शक्तिमय एवं पूर्ण हैं। वे एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न अपनी स्वरूप-सीमा में ही रहते हैं और एक दूस का स्पर्श तक नहीं करते। अतः सभी जड़-चेतन सत्ता नितान्त शुद्ध हैं। आत्मा भी एक ऐसी ही स्वयंसिद्ध निरपेक्ष, शुद्ध चैतन्य सत्ता है। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदि उसकी असाधारण शक्तियाँ अथवा स्वभाव हैं ज शाश्वत उसी में रहते हैं। वह अपने में परिपूर्ण एवं अन से अत्यन्त भिन्न है। अतः वह एक शुद्ध एवं स्वतन्त्र सत् क्योंकि जो सत् अथवा सत्ता है वह स्वतन्त्र, पूर्ण ए पवित्र होना ही चाहिए अन्यथा वह सत् कैसा? ज जड़ है वह पूरा जड़ हो एवं चेतन पूरा चेतन। अपूर जड़ अथवा अपूर्ण चेतन का स्वरूप भी क्या हो अतः भिन्नत्व, पूर्णत्व एवं एकत्व सत् का स्वरूप ही है विश्व के दर्शनों में जैन दर्शन का यह एक मौलिक अनुसंधान है। अपने अनुसंधान में उसने कहा – वस्तु का

एकत्व ही उसका परम सौन्दर्य है। सम्बन्ध की वार्ता विसंवाद है।"

विश्व के प्रत्येक पदार्थ के दो अवयव हैं – एक उसकी अनन्त शक्तिमय ध्रुव सत्ता जिसे द्रव्य कहते हैं और दूसरी उसकी प्रति समय बदलने वाली पर्याय। आत्म पदार्थ के भी इसी प्रकार दो अवयव हैं – एक उसकी श्रद्धा, ज्ञान, आनन्द आदि अनन्तशक्तिमय, ध्रुव, शुद्ध एवं पूर्ण सत्ता एवं दूसरी उसकी श्रद्धा, ज्ञान आदि पर्याय (मानने-जानने आदि रूप पर्याय)। आत्म-सत्ता का ऐसा परिशुद्ध स्वरूप स्थापित हो जाने पर आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान (मानने-जानने वाली पर्याय) वृत्ति का केवल एक ही काम रहा कि वह आत्मा को पूर्ण एवं शुद्धही माने, ऐसा ही जाने एवं ऐसाही अनुभव करे एवं अन्य सभी जड़-चेतन पदार्थों को अपने से भिन्न जाने। किन्तु आत्मा की इस वृत्ति में सदा से ही यह अज्ञान एवं अविश्वास रहा कि उसने अपने को शुद्ध एवं पूर्ण माना ही नहीं, अतएव अपनी पड़ौसी देहादि सत्ताओं में ही मुग्ध रही। उन्हीं में अहं किया एवं उन्हीं में लीनता। पर-सत्ताओं में अहं की यह वृत्ति महान् व्यभिचारिणी है, क्योंकि उसमें विश्व की अनन्त सत्ताओं को अपने अधिकार में लेकर उनमें रमण करने की चेष्टा है। अतः विश्व की स्वतन्त्र एवं सुन्दर व्यवस्था को समाप्त कर देने की यह हरकत विश्व का सर्व महान् अपराध हुआ और उसकी दण्ड-व्यवस्था में निगोद फलित हुआ।

परिशुद्ध कांचन-तत्त्व होने पर भी आत्मा की वृत्ति में इतना लम्बा एवं ऐसा भयंकर अज्ञान क्यों रहा?

अनादि अज्ञान के प्रवाह में शुद्धात्मानुभूति-सम्पन्न किन्हीं ज्ञानी सत्पुरुष का सुयोग मिलने पर जो महान् उद्यमशील आत्मा उनकी कल्याणी वाणी को हृदयंगम करता है, उसका अनादि का अज्ञान शिथिल होकर इस समर्थ विचार में प्रवृत्त होता है। ज्ञानी गुरु के सुयोग एवं उनकी वाणी मात्र से यह नहीं होता वरन् गुरु की वाणी का मर्म जिसे अपने ज्ञान में प्रतिभासित हुआ है उसे यह विशुद्ध चिंतनधारा प्रारम्भ होती है। एक प्रश्न हमारा और हो सकता है कि अज्ञानी को ज्ञान ही नहीं है, वह यह सब कैसे करता होगा ? तो ऐसा नहीं है कि उसके पास ज्ञान का अभाव है। अज्ञानी के पास ज्ञान तो बहुत है किन्तु परसत्तासक्ति के कारण उसके ज्ञान का सूक्ष्माति-सूक्ष्म व्यवसाय भी पर में ही होता है। किन्तु यही ज्ञान सद्गुरु भगवन्त से आनन्द निकेतन स्व-सत्ता की महिमा सुनकर उसके प्रति उग्र व्यवसाय करके सम्यग्ज्ञान में परिणत हो जाता है और अतीन्द्रिय आनन्द का संवेदन करने लगता है।

अज्ञानी के ज्ञान का यह ईहात्मक प्रश्न कि 'अज्ञान का अन्त कैसे हो' अज्ञान को एक खुली चुनौती है। इस प्रश्न में अज्ञानी को अज्ञान का स्वरूप विदित हो चुका है। अब वह समझने लगा है कि मेरी चैतन्य सत्ता तो अनादि-अनंत, पूर्ण, ध्रुव, अक्षयानन्द एवं सर्व सम्बन्ध विहीन है और मेरी ही वृत्ति ने उसे नश्वर, अपूर्ण, दुःखी, अज्ञानी एवं पराधीन कल्पित किया है। यही मेरा अज्ञान था और अज्ञान आत्मा की पर्याय होने पर भी झूठा

[illegible]

[illegible] में ही अनुराग जगाता है जो सदा से पुण्य-पाप जैसी पर-सनाओं में पड़ा अपनी श्रद्धा का अहं कंपित एवं विलोलित होकर स्खलन को प्राप्त होता है और लौट कर अपनी ध्रुव अचल सत्ता में ही अन्तर्लीन होता है। स्वरूप के अहं में धारावाहिक सक्रिय उस [illegible] वृत्ति को ही सम्यग्दर्शन कहते हैं। श्रद्धा का स्व-सत्ता में अहं परिणत होने के ही क्षण में श्रुतज्ञान की अविराम चिंतनधारा मन का अवलम्बन तोड़ती हुई विराम को प्राप्त होकर उसी शुद्ध चैतन्य सत्ता में एकत्व करती हुई अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति करती है। उपयोग की यह परिणति ही सम्यग्ज्ञान है जो अनुभूति का विलय हो जाने के उपरान्त भी भेद-विज्ञान की प्रचंड क्षमता को लेकर सम्यग्दर्शन के साथ निरन्तर बना रहता है और उसी समय किंचित् रागांशों के अभाव से उत्पन्न अल्प-स्वरूप स्थिरता ही स्वरूपाचरण चारित्र है। इस प्रकार परम आनन्दस्वरूप यह अनुभूति श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की त्रिवेणी है और साक्षात् मोक्षमार्ग है।

जैन दर्शन का यह चिंतन सचमुच कितना वैज्ञानिक है – जहाँ वह यह प्रतिपादन करता है कि जीवन-कला का आरम्भ ही जीवन-तत्त्व ( निज अक्षय सत्ता ) के स्वीकार से होता है; इसीलिए साधना के प्रथम चरण में उसने सम्यग्दर्शन को स्थापित किया और कहा कि इसके बिना सर्वबोध एवं जीवन की सर्व आचार-संहिता मिथ्या ही होती है।

सम्यग्दर्शन जैसी जीवन की महान् उपलब्धि एवं उसके विषय को हृदयंगम करने के लिए यदि हम आत्म-पदार्थ के द्रव्य-पर्याय स्वरूप पर अनेकांतिक दृष्टि से विचार करें तो निर्णय बड़ा सरल हो जावेगा। यह निर्विवाद है कि आत्म-पदार्थ के दो अंश हैं – द्रव्य एवं पर्याय। आत्म-पदार्थ का द्रव्य अंश जिसे शुद्ध चैतन्य सत्ता, कारण परमात्मा, परम पारिणामिक भाव भी कहते हैं; सदा पर से भिन्न, अक्षय, अनन्तशक्तिमय, पूर्ण, ध्रुव, अत्यन्त शुद्ध एवं पूर्ण निरपेक्ष है। उसमें कुछ भी करने का कभी भी अवकाश नहीं है और वह सदा ज्यों का त्यों रहता है। आत्मा के द्रव्यांश का यह स्वरूप प्रसिद्ध हो जाने पर अब उसका दूसरा अंश पर्याय शेष रह जाती है। यदि हम पर्याय की कार्य-मर्यादा पर विचार करें तो हमारे मन में स्वाभाविक ही एक प्रश्न पैदा होगा कि द्रव्य के पूर्ण एवं शुद्ध सिद्ध हो जाने पर पर्याय को तो द्रव्य में कुछ करना ही नहीं रहा, तब फिर पर्याय का कार्य क्या होगा ? तो उसका एक यह सरल उत्तर है कि जब आत्मा का स्वभाव ही श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द

वृत्तियाँ तो स्वयं ही विश्राम के लिए किसी सत्ता को तपासती हैं। इस प्रकार समग्र ही वृत्ति-समुदाय दृष्टि (श्रद्धा) के विपय-क्षेत्र से वाहर रह जाता है। इसी अर्थ में आचार्यदेव श्री अमृतचन्द्र ने कहा है कि "वद्धस्पृष्टादि भाव आत्मा के ऊपर ही ऊपर तैरते हैं, उनका आत्मा में प्रवेश नहीं होता।"

इस सम्वन्ध में कुछ और भी तथ्य विचारणीय हैं। आत्मा एक अनादि अनन्त ध्रुव एवं अक्षय सत्ता है। गुण एवं पर्याय तो उसके लघु अंश हैं और वह एक ही सदा इनको पीकर वैठा है। अतः गुण पर्याय के अनन्त सत्त्वों से भी वह एक चिन्मय सत्ता वहुत अविक है। पर्याय जव उस अनन्तात्मक एक का अहं एवं अनुभव करती है तो उस एक की अनुभूति में अनन्त ही गुणों का स्वाद समाहित हो जाता है। इसके विपरीत एक-एक गुण पर्याय की अनुभूति की चेप्टा स्वयं ही वस्तुस्थिति के विरुद्ध होने से कभी भी फलित नहीं हो पाती, अतः प्रतिक्षण आकुलता ही उत्पन्न करती है। क्योंकि वस्तु के प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुणों की समष्टि इस तरह संगठित एवं एकमेक होकर रहती है कि उनमें से किसी एक के अनुभव का आग्रह अनन्तकाल में भी साकार नहीं होता वरन् अज्ञानी अपनी इस चेप्टा में प्रतिक्षण विफल-प्रयास होने से निरन्तर प्रचण्ड आकुलता को उपलव्ध करता रहता है। गुण पर्याय के अहं में अनन्त गुण पर्याय की एकछत्र स्वामिनी भगवती चैतन्य सत्ता का महान् अपमान भी होता है। अतः गुण पर्याय का अहं भी जड़ सत्ताओं के अहं के समान मिथ्यादर्शन ही है।

आत्मा के द्रव्य गुण पर्याय एक ही समय में ज्ञान के विषय तो बनते हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इनको अहं भी एक ही साथ समान रूप से समर्पित किया जाये। अनेक को एक साथ जानना एक बात है और फिर उनमें से श्रद्धा (अहं) के विषय का चयन करना बिलकुल भिन्न दूसरी बात है। सभी ज्ञेय श्रद्धेय नहीं होते वरन् आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्यायमय परस्पर विरुद्ध स्वरूप को जानकर ज्ञान ही यह निर्णय लेता है कि ये तीनों समान रूप से उपादेय नहीं हो सकते वरन् तीनों में मात्र निरपेक्ष, निर्भेद एवं निर्विशेष द्रव्य सामान्य ही उपादेय अथवा श्रद्धेय होने योग्य है। अन्य की उपादेयता स्पष्ट मिथ्यादर्शन है।

एक वार्ता यह भी बहुलता से चलती है कि जब एकान्त पर्यायदृष्टि अर्थात् पर्याय का अहं मिथ्या एवं आकुलतास्वरूप है तो एकान्त द्रव्यदृष्टि भी मिथ्या एवं आकुलतामय होना चाहिए। यह तर्क ठीक ऐसा ही लगता है कि गर्त में गिरना यदि एकान्त कष्टमय है तो सदन का निवास भी एकान्त कष्टप्रद ही होना चाहिए, किन्तु यह तर्क तो स्पष्ट अनुभूति के विरुद्ध है। जब समग्र ही पर्याय-समुदाय अज्ञान, राग-द्वेष एवं अनित्यता का आयतन है और इसके समानान्तर एक मात्र निज चैतन्य सत्ता ही शुद्ध, पूर्ण, ध्रुव एवं आनन्द-निकेतन है तो दोनों में से किसका अहं एवं किसका अवलम्बन श्रेयस्कर होगा? एक बात और है और वह यह कि ज्ञान सदा अनैकांतिक ही होता है और दृष्टि सदा एकांतिक ही होती है। द्रव्य

एवं पर्याय के परस्पर विरुद्ध दोनों पहलुओं का परिज्ञान हो जाने पर सहज ही यह निर्णय हो जाता है कि वृत्ति (दृष्टि) को दोनों में से कहाँ आराम मिलेगा। निश्चित रूप में ध्रुव द्रव्य ही शाश्वत आराममय है। इस प्रकार ध्रुव की महिमा ज्ञात हो जाने पर अनादि से वृत्ति-समुदाय में पड़ा श्रद्धा का अहं विगलित होकर निज ध्रुव सत्ता के अहं में परिणत हो जाता है।

श्रद्धा का विषय इतना स्पष्ट होने पर भी प्रमाणाभास से ग्रासीभूत आग्रह श्रद्धा के विषय में पर्याय शामिल किये बिना तृप्त नहीं होते। किन्तु हमारा संतुलित विशुद्ध चिन्तन स्वयं हमें यह समाधान देगा कि श्रद्धा के विषय-क्षेत्र में पर्याय के भी पदार्पण का हमारा आग्रह अविवेक तो है ही, साथ ही अत्यन्त अव्यावहारिक भी है। इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात सदा दृष्टव्य है – एक प्रश्न है कि श्रद्धा का श्रद्धेय पहले से ही विद्यमान एवं पूर्ण होता है या श्रद्धा के क्षण में स्वयं श्रद्धा आदि वृत्तियाँ श्रद्धेय के साथ मिलकर उसे पूरा करती हैं और तब वह उसका श्रद्धेय होता है? यदि श्रद्धा आदि वृत्तियाँ श्रद्धेय को पूरा करती हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि श्रद्धेय सदा ही अपूर्ण है और अपूर्ण श्रद्धेय में श्रद्धा का सर्व-समर्पण एवं लीनता अनन्तकाल में भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार श्रद्धेय की अपूर्णता में श्रद्धा का स्वरूप सदैव संदिग्ध, भ्रान्त एवं मलिन ही रहेगा और वह कभी भी सर्व समर्पण-पूर्वक श्रद्धेय का वरण नहीं करेगी। एक बात और है – यह तो सर्वविदित है कि वर्तमान में अज्ञानी का सर्व पर्याय-

को द्रव्य में मिलाकर श्रद्धा करने का आग्रह भी समान कोटि का मिथ्यादर्शन ही है, क्योंकि भावी निर्मल पर्यायें तो वर्तमान में विद्यमान ही नहीं हैं, अतः उस अविद्यमान सत् को विद्यमान द्रव्य में मिलाने की विधि क्या होगी ? दूसरी वजनी बात यह है कि कोई भी पर्याय नित्य विद्यमान निर्विकारी निज चैतन्य सत्ता के अवलम्बन पर शुद्ध होती है, न कि शुद्ध पर्याय का अवलम्बन होता है।

इस संदर्भ में एक अत्यंत सुन्दर मनोवैज्ञानिक तर्क भी हमें समाधान देगा – कि जब इस विश्व की अनंत सत्ताओं की तरह निज चैतन्य सत्ता भी संपूर्ण एवं सुन्दर है एवं विश्व की प्रत्येक सत्ता के पास जितना वैभव है उतना ही हमारे पास भी है, तथा अन्य सत्ताओं के स्वामी अन्य द्रव्य ही हैं और अन्य द्रव्य ही होने चाहिएँ एवं उनके स्वामित्व का हमें कोई अधिकार भी नहीं हो सकता और होना भी नहीं चाहिये; तो फिर संपूर्ण एवं सुन्दर स्व-सदन (स्व-सत्ता) का अवलंबन छोड़कर पर-सदन (पर-सत्ता) में प्रवेश का यत्न क्या वैध एवं विधेय होगा ? और क्या इस बलात्कार में शान्ति एवं आनन्द की उपलब्धि हो सकेगी ? निश्चित ही नहीं होगी वरन् यह यत्न विश्व का महान् अपराध घोषित किया जायगा।

पुनः एक अत्यंत हृदयग्राही तथ्य भी हमारा ध्यान आकर्षित करेगा और वह यह कि वस्तु की वृत्ति को स्वयं वस्तु में ही विराम न मिले, यह विधान किसने बनाया ? माँ की गोदी में अपने ही बालक को धारण करने की क्षमता कब नहीं रहेगी ? और वस्तु की वृत्ति अपनी ही

जाता है और ध्रुव-सामान्य प्रतीत मानो पूरे आत्म-पदार्थ में सम्यग्दर्शन का विषय पदार्थ का ध्रुव सामान्य द्रव्यांश ही होता है, किन्तु अंश होने से वह अपूर्ण नहीं वरन् स्वयं ही पूर्ण है और दृष्टि (श्रद्धा) भी उसमें अंश का नहीं वरन् पूर्ण का अनुभव करती हुई स्वयं पूर्ण है। इस प्रकार दोनों अंशों की पूर्णता ही वस्तु की पूर्णता है। ध्रुव को अंश मानकर श्रद्धा करना प्रकारान्तर से मिथ्या-दर्शन ही है। जैसे ग्यारह के अंक में एक के दोनों अंक अपने-अपने में पूर्ण ही हैं। इस प्रकार दोनों की पूर्णता ही ग्यारह की पूर्णता है। यदि एक के दोनों अंक अपूर्ण हों तो ग्यारह का पूर्णांक ही उपलब्ध नहीं होगा, क्योंकि दो अपूर्ण स्वयं तो कभी पूरे होते ही नहीं, किन्तु दोनों मिलकर भी किसी एक पूर्ण स्वरूप को निष्पन्न नहीं कर सकते। यह वस्तु-स्वभाव की स्वयंसिद्ध विलक्षणता ही है।

वास्तव में सम्यग्दर्शन को जो 'ध्रुव का अहं' कहा जाता है वह बात ज्ञान की ओर से है। किन्तु सम्यग्दर्शन स्वयं अपने को 'ध्रुव का अहं' स्वीकार नहीं करता वरन् ध्रुव स्वीकार करता है। अपने समक्ष विद्यमान 'ध्रुव' में 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी उसकी अभेद स्वीकृति होती है और इस अभेद स्वीकृति को ही 'ध्रुव का अहं' कहते हैं। 'अहं मय ध्रुव' श्रद्धा का श्रद्धेय नहीं होता। श्रद्धा का श्रद्धेय इतना पूर्ण एवं सर्वोपरि होता है कि वह उसमें अपने को मिलाने का अवकाश नहीं पाती। वास्तव में 'पूर्ण' में 'पूर्ण के अहं' के मिलने की भी कोई गुंजाइश नहीं होती, अतः उस पूर्ण में 'पूर्ण के अहं' का भी त्रिकाल

[illegible] है और इसीलिये [illegible] [illegible] आनन्दमय होता है।

इस पद्धति में आत्मा को मात्र ध्रुव मानने से उसमें पर्याय का अभाव नहीं हो जाता वरन् 'ध्रुव एवं ध्रुव की श्रद्धा', 'पूर्ण एवं पूर्ण का भाव', इस प्रकार दोनों अंशों की निरपेक्ष पूर्णता में आत्म-पदार्थ द्रव्य-पर्यायस्वरूप पूर्ण ही बना रहता है, जैसे शरीर के प्रत्येक अंग की पूर्णता ही शरीर की पूर्णता है। यदि शरीर के सभी अंग अधूरे हों तो सब अधूरे अंगों से एक पूर्ण शरीर तो निष्पन्न नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'आधा द्रव्य एवं आधी पर्याय' यह पदार्थ का स्वरूप नहीं वरन् 'पूर्ण द्रव्य एवं पूर्ण पर्याय' यह पदार्थ का स्वरूप होता है। वास्तव में ध्रुव को अंश मानने वाली श्रद्धा में पूर्णता की प्रतीति ही नहीं होगी, फलस्वरूप अनुभूति में आनन्द की निष्पत्ति ही नहीं होगी; वरन् अंश अर्थात् अपूर्ण की प्रतीति होने से सदा ही ऐसा लगता रहेगा कि आत्मा में अभी कुछ कमी है। निश्चय ही श्रद्धा आदि वृत्तियों का कार्य ध्रुव आत्मा में कुछ करना नहीं वरन् उसे ध्रुव मात्र मानना होता है। 'मैं ध्रुव हूँ' यही सम्यग्दर्शन का स्वर है। सम्यग्दर्शन की काया ध्रुव से ही निर्मित है। उसमें सर्वत्र ध्रुव ही पसरा है। अनित्यता उसमें है ही नहीं। उसे विश्व में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का स्वीकार ही नहीं है। उसका विश्व ही ध्रुव है। यदि दृष्टि में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का भी स्वीकार हो तो दृष्टि का स्वभाव अहं होने के कारण उसे अन्य

उसे इस भव अथवा भवान्तर में चारित्र का उदय होता है। मोक्षमार्ग की क्रमिक भूमिकाओं का उल्लंघन करके जल्दबाजी करने से चारित्र नहीं आता, वरन् शुद्ध चैतन्य तत्त्व की उग्र भावना से ही जीवन में चारित्र का उदय होता है।

श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का तो विशद विवेचन श्री कानजी स्वामी की वाणी में हुआ ही है, किन्तु साथ ही जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान एवं आर्हत दर्शन का प्राण अनेकांत आदि का जो अत्यन्त प्रामाणिक, आगम-सम्मत एवं सतर्क प्रतिपादन हुआ है वह चित्त को चकित कर देता है। सम्भवतः जैन दर्शन का आधारभूत कोई सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसमें उनके ज्ञान एवं वाणी का व्यवसाय नहीं हुआ हो। अध्यात्म का ऐसा सांगोपांग एवं व्यापक विवेचन तो शताब्दियों में नहीं हुआ। बयालीस वर्ष से अध्यात्म की बरसातें करती हुई उनकी प्रज्ञा ने अज्ञान की जड़ें हिला दी हैं। तीर्थंकरों एवं वीतराग सन्तों के हृदय का मर्म खोलकर उन्होंने हमें तीर्थंकरों के युग तक पहुँचा दिया है। उनकी प्रज्ञा ने आगम के गम्भीर रहस्यों की थाह लेकर जो मर्म निकाले हैं वह इस युग का एक आश्चर्य-सा लगता है। वाणी का यह कमाल कि बयालीस वर्ष के धारावाहिक प्रवचनों में कहीं भी पूर्वापर विरोध नहीं है। आत्म-प्रसिद्धि, नय प्रज्ञापन एवं अध्यात्म संदेश जैसी साहित्यिक निधियाँ उनकी निर्मल एवं पैनी प्रज्ञा के ऐसे प्रसव हैं जिन्हें देखकर आज के युग का बौद्धिक अहं उनके

सात्विक एकाशन एवं परिमित आहार, आगम सम्मत सत्य सम्भाषण, करुण एवं सुकोमल हृदय उनके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। ८७ वर्ष की अति वृद्ध अवस्था में भी उनकी दिनचर्या इतनी नियमित एवं संयमित है कि एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। "समयं गोयम मा पमायए" की वीर वाणी उनके जीवन में अक्षरशः चरितार्थ हुई है। शुद्धात्म तत्व का अविराम चिन्तन एवं स्वाध्याय ही उनका जीवन है। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे सदैव सतर्क एवं सावधान हैं। उसका उल्लंघन उन्हें सह्य नहीं है। उनके जीवन का प्रत्येक स्थल अनुकरणीय है। निश्चित ही वे इस जगत् के वैभव हैं और युग उन्हें पाकर गौरवान्वित हुआ है।

वे युग पुरुष युगों-युगों तक मुक्ति का संदेश प्रसारित करते हुए युग-युग जीवें, यही आज के युग-अन्तस् की एक मात्र कामना है।

मैं उन युग पुरुष की ८७वीं जयन्ती के पुण्य पर्व पर अपनी श्रद्धा के अनन्त सुमन उनके चरणों में चढ़ाता हूँ!!

---

*दानियों को देखना तो तीर्थों पर जाइए,*
*संगमरमर पर खुदे हैं नाम खुद पढ़ आइए;*
*धर्म और धर्मात्मा ऐसे बहुत मिल जायेंगे,*
*आत्मा को देखना तो सोनगढ़ में जाइए।*

— हजारीलाल 'काका'

है कि आपके पास कोई जादू की लकड़ी का चमत्कार है। आप जिस पर उसे फेर देते हो, वह आपका भक्त हो जाता है, निहाल हो जाता है, सम्पन्न हो जाता है।

स्वामीजी ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा – हमारे पास कोई जादू की लकड़ी नहीं है। हाथ में पसीना आता है – उससे शास्त्र के पृष्ठ खराब न हो जावें, इसलिए लकड़ी रखते हैं। हाथ की लकड़ी दिखाते हुए बोले – "यह लकड़ी कोई जादू की लकड़ी है – यह लोगों का कोरा भ्रम है। इसी भ्रम के कारण एक बार तो कोई लकड़ी चुरा ले गया।"

"तो आप इस भ्रम को दूर क्यों नहीं करते?" यह पूछने पर सहज भाव से स्वामीजी कहने लगे – हमने तो कई बार चर्चा में और प्रवचनों के बीच भी कहा है। इससे अधिक हम क्या कर सकते हैं?

**प्रश्न** – यह बात ठीक है कि आपके पास न तो कोई जादू है और न उसका कोई प्रयोग ही आप करते हैं, पर जो व्यक्ति एक बार आपके पास आता है, आपके प्रवचनों को सुनता है, वह आपका हो जाता है; इसका क्या कारण है?

**उत्तर** – हमारे पास आत्मा की बात है, दुःख से छूटने की बात है, सच्चा सुख प्राप्त करने की बात है। सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से बचना चाहते हैं। अतः जो भी शान्त भाव से बिना पूर्वाग्रह के हमारी बात सुनता है वह अवश्य प्रभावित होता है। हमारे पास तो

**प्रश्न** – तो आपको गुरुदेव विद्या-गुरु के अर्थ में कहा जाता है, देव-शास्त्र-गुरु के अर्थ में नहीं ।

**उत्तर** – हाँ-हाँ यही बात है । भाई हम तो कई बार कहते हैं कि वस्त्र पात्रादि रखे और अपने को देव-शास्त्र-गुरु वाला गुरु माने मनवावे, वह तो अज्ञानी है । अधिक हम क्या कहें ?

**प्रश्न** – अभी जब साधुओं की चर्चा आई तो आपने कुन्दकुन्द या अमृतचन्द का नाम लिया, तो क्या आप अकेले कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्र को ही सच्चा साधु मानते हैं, प्रामाणिक मानते हैं, और आचार्यों को नहीं ?

**उत्तर** – कैसी बातें करते हो ? हम तो सभी वीतरागी सन्तों को मानते हैं । सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमीचंद्र, भूतबलि, पुष्पदन्त, समन्तभद्र, उमास्वामी, अकलंक, पद्मप्रभमल-धारिदेव, जयसेनाचार्य आदि सभी मुनिराज आचार्य भगवन्त पूज्य हैं, सम्माननीय हैं ।

अरे भाई ! आचार्यों को ही क्या, हम तो पण्डित बनारसीदासजी, टोडरमलजी, जयचन्दजी, दौलतरामजी आदि महान् पण्डितों के शास्त्रों को पूर्ण प्रामाणिक मानते हैं ।

**प्रश्न** – मानते होंगे, पर आप पढ़ते तो समयसार ही हैं, अन्य ग्रंथ नहीं ।

**उत्तर** – कौन कहता है ? हमने सभी शास्त्रों का अनेक बार स्वाध्याय किया है । दिगम्बर शास्त्रों का तो दोहन किया ही है, श्वेताम्बरों के भी लाखों श्लोक

दिगम्बराचार्यों के सभी ग्रंथ महान् हैं। समस्त शास्त्रों का तात्पर्य एकमात्र वीतरागता है।

**प्रश्न** – आप पुण्य भाव को हेय कहते हैं – तो क्या पूजा-पाठ, दया-दान आदि पुण्य कार्य नहीं करना चाहिए ?

आपके भगत तो पूजा-पाठ करते नहीं होंगे, दान देते नहीं होंगे ?

**उत्तर** – कौन कहता है ? जैसी पूजा सोनगढ़ में होती है, वैसी और जगह देखी भी नहीं होगी। कई विधान महोत्सव हो चुके, पंचकल्याणक – वेदी प्रतिष्ठाएँ अनेक हुई हैं, जिनकी सूची मई के अंक में दी गई है।

दान ! दान की क्या बात करते हो !! बिना कहे ही यहाँ वर्षा सी होती है, देखते नहीं। हम पूजा-पाठ, दया-दान थोड़े ही छुड़ाते हैं, उसे धर्म मानना छुड़ाते हैं। वह धर्म है भी नहीं।

**प्रश्न** – यदि धर्म नहीं तो फिर क्यों दें दान ? क्यों करें पूजा ?

**उत्तर** – धर्मी जीव को देव-पूजा एवं दानादि देने का भाव आता ही है, आये बिना नहीं रहता। जब-जब शुद्धोपयोग न हो तो शुभोपयोग तो रहेगा ही।

आचार्य पद्मनन्दी ने तो पद्मनन्दिपंचविंशतिका में यहाँ तक लिखा है कि – कौआ भी जब खुरचन को प्राप्त करता है तब साथी कौओं को बुलाकर खाता है, अकेला नहीं खाता। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्राप्त धन का उप-

**उत्तर** – लोग तो भगवान की भी नहीं मानते थे। यदि मान जाते तो संसार में ही क्यों रहते। भाई! सुनने वाले की भी तो पात्रता होती है। मानना, नहीं मानना, सुनने वाले की पात्रता पर निर्भर करता है।

जो मानते हैं वे अपने कारण और जो नहीं मानते वे भी अपने कारण। दोनों में ही हमारा क्या है?

**प्रश्न** – आपने कहा कि हजारों लोग सुनते हैं। आत्मा की इतनी सूक्ष्म बात बीस-बीस हजार जनता की समझ में क्या आती होगी?

**उत्तर** – क्यों नहीं आती होगी? सभी आत्मा हैं भगवान् हैं। जब आठ वर्ष की बालिका को सम्यग्दर्शन हो सकता है तो.......। न सही पूरा, कुछ न कुछ तो आता ही होगा, तभी तो प्रतिदिन आते हैं। फिर हमारी भाषा तो सादी है, भाव अवश्य कठिन है, पर इसके समझे बिना कल्याण भी तो नहीं। हमको क्या? हमारे पास तो यही बात है। और लाएं भी कहाँ से। संसार से छूटने की बात तो यही है, इसे जाने बिना कल्याण नहीं।

**प्रश्न** – समाज में सर्वत्र दो दल हो गए हैं। यदि थोड़े आप झुकें और थोड़े वे, तो समझौता हो सकता है।

**उत्तर** – भाई धर्म में समझ का काम है, समझौते का नहीं। धर्म तो वस्तु के स्वभाव को कहते हैं। वस्तु का स्वभाव तो जो है सो है, उसे समझना है, उसमें समझौते की गुंजाइश कहाँ है। हम तो किसी से लड़ते ही नहीं, फिर समझौते की बात कहाँ है। आत्मा को सही समझना ही सच्चा धर्म है।

[illegible] है। [illegible] स्वामी [illegible] [illegible] है[2]।"

[illegible] के [illegible] श्री कानजी स्वामी के प्रति उद्गार [illegible] ...

"अत्यन्त [illegible] का परिज्ञान पाने के लिए जिनवाणी की [illegible] अथवा ज्ञानी जनों की संगति ही मात्र निमित्त कारण है। अत्यन्त दुर्लभ उस सार की प्राप्ति में निमित्तरूप से सहायक होने वाले उस ज्ञानी पुरुष के प्रति क्यों स्वाभाविक बहुमान स्वतः उत्पन्न न हो जायेगा? भले ही वह ज्ञानी पुरुष-विशेष साक्षात् वीतरागी भगवान् अरहंत हों या वीतरागी दिगम्बर गुरु हों, या कोई श्रावक हों, अथवा गृहस्थ हों; तत्त्व की प्राप्ति में निमित्तपने की अपेक्षा सब समान हैं। यद्यपि वैराग्य व चारित्र की भूमिकाओं की अपेक्षा उनमें आकाश-पाताल का अंतर है।

काठियावाड़ देशस्थ सोनगढ़ ग्राम के सुप्रसिद्ध अध्यात्म-योगी कानजी स्वामी भी उन्हीं में से एक हैं। अध्यात्म जगत् के वासी उनके अर्थात् श्री कानजी स्वामी के उस महत् उपकार को कदापि नहीं भुला सकते – जो कि उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा भौतिक युग की अन्धकारमय जगती पर विलुप्तप्राय: हो जाने वाली अध्यात्म-धारा को पुन: नव जीवन प्रदान किया है[2]।"

"इसमें कोई शक नहीं कि कानजी स्वामी के उपदेश से अनेक अंशों में क्रान्ति उत्पन्न हुई है। पुराना पोपडम खतम हो रहा है और लोगों को नई दिशा मिल रही है। यह मानना गलत है कि वे एकान्त निश्चय के पोषक हैं। हम सोनगढ़ में एवं सर्वत्र फैले हुए उनके अनुयायियों में निश्चय तथा व्यवहार का सन्तुलन देख रहे हैं। सौराष्ट्र में अनेकों नवीन मन्दिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठायें स्पष्ट बतलाती हैं कि वे व्यवहार का अपलाप नहीं करते। वे भगवान् कुन्दकुन्द के सच्चे अनुयायी हैं। जो उनकी आलोचना करते हैं वे आपे में नहीं हैं व उन्होंने न निश्चय को समझा है न व्यवहार को और सच तो यह है कि उन्होंने जैन शास्त्रों का हार्द ही नहीं समझा।

सोनगढ़ से जो धार्मिक साहित्य निकल रहा है उससे स्वाध्याय का बहुत प्रचार हुआ है।...निमित्त और उपादान तथा क्रमबद्धपर्याय आदि दार्शनिक चीजें हैं, विद्वानों के समझने की हैं। ऐसी चीजों को आन्दोलन का विषय बनाना समाज की शक्ति को क्षीण करना है। हमें प्रत्येक प्रसंग को निष्पक्ष दृष्टि से देखना चाहिए। ...का प्रयत्न प्रशंसनीय है'।"

जैन समाज के गौरव, लब्ध...
पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री,
प्रभावित होकर उनके प्रति अप...
लिखा है :–

हमने स्वामीजी को नजदीक से देखा है, उनके और उनके प्रवचनों को नाना अनुभवों को सुना है। हमें विश्वास है कि वे दिगम्बर जिनागम के कट्टर श्रद्धानी हैं। ...... स्वामीजी प्रतिज्ञारूप प्रतिमा आदि नहीं पालते तथापि उनके आचरण खान-पान आदि किसी प्रतिमाधारी से कम नहीं हैं। उत्तम आचरण, मर्यादित खान-पान, आजीवन ब्रह्मचर्य, मन्दकषाय आदि उनके गुण उनमें और उनके अनेक शिष्यों में पाये जाते हैं[1]।"

भारतवर्षीय विद्वत्परिषद् के मन्त्री श्री पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर ने लिखा है – "श्री कानजी स्वामी युग पुरुष हैं, उन्होंने दिगम्बर जैन धर्म के प्रभाव का महान् कार्य किया है। उनके इस जीवन-निर्माण में समयसार का अद्भुत प्रभाव है। इसमें निबद्ध कुन्दकुन्द स्वामी की विशुद्ध अध्यात्म देशना ने अगणित प्राणियों का उपकार किया है। इसने पहले महाकवि श्री बनारसीदासजी को दिगम्बर धर्म में दीक्षित किया। फिर शतावधानी श्री राजचन्द्र को दि० जैन धर्म का श्रद्धालु बनाया और अब श्री कानजी स्वामी को दिगम्बर धर्म का दृढ़ श्रद्धानी बनाया है। न केवल कानजी स्वामी को, किन्तु उनके साथ २० हजार व्यक्तियों को भी इस धर्म में दीक्षित कराया है। समयसार से प्रभावित होकर श्री कानजी स्वामी ने शुद्ध वस्तुस्वरूप को समझा, वर्षों इसका एकांत में मनन किया और अन्तरंग की प्रबल प्रेरणा पाकर

[1] कानजी स्वामी अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ ८

[illegible]

[illegible] स्वामीजी के [illegible] [illegible] समझा।

भले ही लोग कहें कि व्यवहार उड़ा दिया, मुनि निन्दक हैं; परन्तु भाई! पक्षपात छोड़कर निर्णय करो। व्यवहार-कुशलता, सद्प्रवृत्ति जो सोनगढ़ में है, शायद ही अन्यत्र हो[1]।"

उनके अनन्त उपकार स्वीकृत करते हुए श्री कान्तीलाल शाह, बम्बई ने स्वामीजी के प्रति जो श्रद्धा एवं कृतज्ञता ज्ञापन की, वह उन्हीं के शब्दों में पढ़िये :–

"आपने समाज का बड़ा उपकार किया है। वस्तु तत्त्व का विवेचन, यथार्थ रूप में विवेचन आप से ही मिलता है। आप स्वयं भी भेद-विज्ञान के साक्षात् अवतार हैं। एक बार जो आपका प्रवचन सुन लेता है वह उनका ही हो जाता है। हमारे तो वे धर्म-पिता हैं। उनके अनन्त उपकार का समाज व मैं अत्यन्त ऋणी हूँ। उनकी अमृत-

[1] सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५

ाती है। अधिकांश जैन समाज धर्म साधन करते एवं ण्य कार्यों को सम्पादित करते हुये भी अपनी उस चिर-ालीन भूल को नहीं समझ सका था, जिसके कारण क वह आज तक भव-वन में भटकता आ रहा है। आपने ोगों को उस 'मूल में भूल' को बतला कर उन्हें सही दशा का ज्ञान कराया है और करा रहे हैं।

जिसने कभी अध्यात्म की चर्चा नहीं सुनी ऐसे नेक जैनेतर व्यक्ति भी आपके आध्यात्मिक प्रवचन सुन र अध्यात्म गंगा में गोते लगाने लगते हैं। मैंने अपने ीवन में ऐसा प्रभावशाली अनोखा व्यक्तित्व अन्यत्र हीं नहीं देखा[1]।"

समाज के सर्वमान्य नेता साहू शांतिप्रसादजी जैन निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किये हैं :-

"स्वामीजी ने वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार करके ैन धर्म व समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है। ास्तव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान व चारित्रधर्म की पुनर्स्थापना ं उनका बहुमूल्य स्थान रहा है, जिसका जैन समाज ादैव ऋणी रहेगा[2]।"

भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई के अध्यक्ष ेठ लालचंद हीराचंद लिखते हैं :-

"संत श्री कानजी स्वामी ने जैन समाज में नई ागृति और नव चैतन्य का निर्माण किया है। समाज

---

[1] सन्मति संदेश, वर्ष ७, अंक ५

[2] आत्मधर्म, मई १९७६, पृष्ठ १२

सुप्रसिद्ध सेठ राजकुमारसिंहजी कासलीवाल, इन्दौर लिखते हैं :-

"सम्वत् २००१, २००२ और २००३ में मेरे पूज्य पिताजी (सर सेठ हुकमचंदजी) विद्वत्-मंडली (पंडित देवकीनन्दनजी, पं० वंशीधरजी आदि) एवं कुटुम्ब सहित सोनगढ़ गये थे और वहां के वातावरण से प्रभावित होकर उन्होंने क्रमशः प्रथम वार २५,००१) रुपया, द्वितीय वार की यात्रा में ११,००१) रु० तथा तृतीय वार ३५,०००) रु० अर्पण किये थे। वे सदैव सोनगढ़ साहित्य पढ़ते रहते थे।

यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मन्दिर आदि के निर्माण और सहस्रों की संख्या में दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों की वृद्धि तथा सौराष्ट्र के बाहर देश में जगह-जगह आधुनिक वातावरण में भी आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि की वृद्धि का श्रेय श्रीकानजी स्वामी और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को ही है[1]।"

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासमिति के महामंत्री **बाबू सुकुमारचंद्रजी जैन** लिखते हैं :-

"मैंने पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को कई बार सुना है और उनके अनेकों प्रवचनों पर मनन भी किया है। मैंने पाया कि मूल जैन धर्म तो वही है जिसका वाचन गुरुदेव अपने प्रवचनों में करते हैं, चाहे हम उसे बाहरी क्रिया-कलापों अथवा स्थूल त्याग में ढूंढें अथवा मूढ़ आस्था में।

[1] आत्मधर्म, मई १९७३, पृष्ठ १५

एवं विवेचन किया। श्री कानजी स्वामी ने लोगों में मात्र स्वाध्याय की रुचि ही उत्पन्न नहीं की, बल्कि हजारों की संख्या में प्रचारकों का निर्माण किया। दिगम्बर आम्नाय सदैव उनकी ऋणी रहेगी[1]।"

इनके साथ-साथ अनेक साहित्यकारों ने भी पूज्य गुरुदेव के प्रति अपनी अनन्त-अनन्त श्रद्धा व्यक्त की है :-

**श्री अक्षयकुमार जैन,** सम्पादक, नवभारत टाइम्स, दिल्ली लिखते हैं :- "गुरुदेव ने वीतराग धर्म का शुद्ध स्वरूप बताकर समाज का बड़ा उपकार किया है। समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा[2]।" ........

**श्री यशपाल जैन,** सम्पादक, जीवन साहित्य, दिल्ली लिखते हैं :- "संत कानजी स्वामी हमारे देश की महान विभूतियों में से हैं। उन्होंने जैन धर्म, जैन संस्कृति और जैन दर्शन की जो सेवा की है वह सर्व विदित है[3]।"

**डॉ० नेमीचंद जैन,** सम्पादक, तीर्थंकर, लिखते हैं :- "सन्त श्री कानजी स्वामी के स्वाध्याय के क्षेत्र में बहुमूल्य प्रदेय हैं। उन्होंने लाखों-लाख लोगों को जो जैन दर्शन का 'क, ख, ग' भी नहीं जानते थे पण्डित बनाया है। उन्हें सिर्फ किताबी ही नहीं वरन् जीवन्त मोक्षमार्गी बनाने में उनका बहुत बड़ा योग है।............मेरे हृदय में

---

[1] आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ ३२

[2] वही, पृष्ठ १८

[3] वही, पृष्ठ ३५

है। परिषद् अपना अधिवेशन का कार्य तो किसी भी स्थान पर कर सकती थी, किन्तु महाराजश्री के आध्यात्मिक उपदेश का लाभ लेने के मुख्य हेतु से इस स्थान को प्रमुखता दी गई है।…………महाराज के पास में हम सब को नई दृष्टि मिली है। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हम फिर इधर आवें और महाराजश्री का उपदेश सुनकर अपना आत्मकल्याण करें'[1]।"

विद्वत्परिषद् के सभी बन्धु पूज्य स्वामीजी के साक्षात् परिचय से प्रसन्न हुए थे और पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दन देते हुए परिषद् ने एक प्रस्ताव भी पास किया था, जो निम्न प्रकार है :—

"आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा जो दि० जैन धर्म का संरक्षण और संवर्धन हो रहा है, विद्वत्परिषद् उसका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करती है तथा अपने सौराष्ट्री साधर्मी भाई-बहिनों के सत्धर्म प्रेम से प्रमुदित होती हुई उनका हृदय से स्वागत करती है। वह इसे परम सौभाग्य और गौरव का विषय मानती है कि आज दो हजार वर्ष बाद भी महाराज ने श्री १००८ वीर प्रभु के शासन के मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवान् श्री कुन्दकुन्द की वाणी को समझकर अपने को ही नहीं पहचाना है अपितु हजारों और लाखों मनुष्यों के जीव-उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने की सुविधा जुटा दी है। परिषद् का दृढ़ विश्वास है कि महाराज के प्रवचन, चिन्तन तथा मनन द्वारा होने वाला दिगम्बर जैन धर्म की मान्यताओं का विश्लेपण

---

[1] आगमपथ, मई १९७६, पृष्ठ ९९

## एक और इन्टरव्यू : कानजी स्वामी से*

बहुचर्चित पुस्तक 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' को लेकर कतिपय निहित स्वार्थों द्वारा समाज में अनेक भ्रम फैलाए जा रहे हैं। उनके समुचित समाधान हेतु आत्मधर्म के सम्पादक द्वारा पूज्य कानजी स्वामी से सोनगढ़ में दिनांक १६-१०-७६ को लिया गया एक इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

"कौन किस का विरोध करता है, अज्ञानवश सब अपना ही विरोध करते हैं।" उक्त मार्मिक शब्द पूज्य कानजी स्वामी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि सम्यग्ज्ञान दीपिका को लेकर कुछ लोग आपका बहुत विरोध कर रहे हैं। बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा – भाई ! मैं तो ज्ञानानन्द स्वभावी एक अनादि-अनन्त ध्रुव आत्मा हूँ। मुझे वे जानते ही कहाँ हैं, यदि

---

* 'आत्मधर्म', नवम्बर, १९७६ से साभार उद्धृत

मैं पढ़ ही रहा था कि मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए गुरुदेव बोले कि ये क्षुल्लक धर्मदासजी जयपुर के पास सवाई माधोपुर तालुका में बोली गांव के रहने वाले थे। खंडेलवाल जाति के चूड़ीवाल गदिया थे। पिता का नाम श्रीलालजी व माता का नाम ज्वालाबाई था और इनका गृहस्थ अवस्था का नाम धन्नालाल था। यह उन्होंने अपनी 'स्वात्मानुभवमनन' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है।

इनकी ये पुस्तकें बहुत दिनों से पठन-पाठन की वस्तु बन रही हैं। तीन-तीन बार छप चुकी हैं और सब मन्दिरों में मौजूद हैं।

**प्रश्न** – होंगी, इससे क्या ? आपने चौथी बार तो छपाई ?

**उत्तर** – हम तो पत्र भी नहीं लिखते। छपाने-वपाने का काम हमारा नहीं।

**प्रश्न** – यह तो ठीक, इसमें क्या। आपने न सही, आपके स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट ने तो छपाई ?

**उत्तर** – उसने भी गुजराती में छपाई थी। हिन्दी में तो भावनगर मुमुक्षु मण्डल से सात-आठ वर्ष पहले छपी थी।

**प्रश्न** – किसी भी मुमुक्षु मण्डल से छपी हो, हम तो यही समझते हैं कि आपने छपाई ?

**उत्तर** – यह अच्छा है, ऐसा क्यों ?

**प्रश्न** – इसलिए, क्योंकि सभी मुमुक्षु मण्डल हैं तो आखिर आपके ही। आपकी आज्ञानुसार ही तो कार्य करते हैं ?

निकाला। और हम भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं, ८० वर्ष की उमर है, तथा यहां के आध्यात्मिक वातावरण से प्रभावित होकर ६४ सम्पन्न घरानों की पढ़ी-लिखी नई उमर की बहिनें आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर यहां रहती हैं। अनेक भाइयों ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य लिए। अधिक क्या कहें ? अनेक दम्पत्ति भी यहां ब्रह्मचर्य लेकर रहते हैं और तत्त्व अभ्यास करते हैं।

जरा विचार तो करो जो क्षुल्लक धर्मदासजी उसी सम्यग्ज्ञान दीपिका में पृष्ठ नं० ५२ पर यह लिख रहे हैं कि –

"जैसे कोहूऽस्त्री अपणा स्वभर्तारकूं त्यजकरिकै अन्य पुरुष की सेवा रमण आदि कर्ती है सोऽस्त्री व्यवचारणी मिथ्यात्णी है तैसे ही कोहू अपणा आपमै आपमयि स्वसम्यक्-ज्ञानमयि देवकूं त्यज करिकै अज्ञानमयि देव की सेवा भक्ति मै लीन है सो मिथ्याती है।"

वे व्यभिचार का पोषण कैसे कर सकते हैं ?

**प्रश्न** – पर उसमें एक जगह तो स्पष्ट ही व्यभिचार का पोषण किया है ?

**उत्तर** – तुमने पढ़ा है ? निकालो, देखो क्या लिखा है ? जब मैंने सम्यग्ज्ञान दीपिका की बहुचर्चित पंक्तियाँ इस प्रकार पढ़ीं –

"जैसे जिस स्त्री का शिर के ऊपर भरतार है स्यात् सो स्त्री पर पुरुष का निमित्त सैं गर्भवी धारण करै तो ताकूं दोप लागते नाहीं।"

बदनामी नहीं होती । इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह दोषी नहीं है । पर-पुरुष से रमण करने वाली तो पापी है ही, पर उसका पाप खुलता नहीं है, बस बात इतनी सी है, क्योंकि उसका पति विद्यमान है ।

तथा ध्यान से देखो उसमें 'स्यात्' शब्द पड़ा है जिसका अर्थ कदाचित् होता है अर्थात् आशय यह है कि उसकी भावना पर-पुरुष से रमण करने की नहीं है, पर कदाचित् प्रसंगवश बलात्कार आदि के कारण गर्भ भी रह जाए तो कोई उसे दोष नहीं देता । 'बड़े की शरण लेने का यही फल है' का आशय पति की उपस्थिति से है ।

**प्रश्न** – 'दोष लागते नाहीं' का अर्थ 'दोष देवै नाहीं' आपने कैसे किया ?

**उत्तर** – हमने किया नहीं, ऐसा ही अर्थ है । क्षुल्लक धर्मदासजी की इसके एक वर्ष पहले उनके द्वारा ही बनाई गई पुस्तक 'स्वात्मानुभवमनन एवं भाषावाक्यावली' में भी यह दृष्टान्त दिया गया है । दृष्टान्त हूबहू है, पर उसमें 'लागते नाहीं' की जगह पर 'देवै नाहीं' लिखा है । इससे प्रतीत होता है कि उनका आशय 'लागते नाहीं' से 'देवै नाहीं' का ही है ।

उक्त पुस्तक भी मुझे दिखाते हुए कहा, लो देखो । मैंने देखा तो 'भाषा वाक्यावली' पृष्ठ चार पर इस प्रकार लिखा था :–

"जैसे जिस स्त्री के शिर के ऊपर भरतार है स्यात् पर पुरुष के निमित्त सैं वा स्त्री गर्भवी धारण करै तोबी

वे युग-युग तक आलोक प्रदान करने वाले दीप्तिमान दिवाकर थे। स्याद्वाद-वाणी में अनेकान्तात्मक वस्तु का जो स्वरूप उनके द्वारा प्रतिपादित हुआ, वह आज भी आत्मार्थियों का पथ आलोकित कर रहा है।

भगवान् महावीर ने प्रत्येक वस्तु की पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की और यह भी स्पष्ट किया कि प्रत्येक वस्तु स्वयं परिणमनशील है। उसके परिणमन में परपदार्थ का कोई हस्तक्षेप नहीं है। यहाँ तक कि परमपिता परमेश्वर (भगवान्) भी उसकी सत्ता का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। जन-जन की ही नहीं, अपितु कण-कण की स्वतन्त्र सत्ता की उद्घोषणा तीर्थंकर महावीर की वाणी में हुई।

दूसरों के परिणमन या कार्य में हस्तक्षेप करने की भावना ही मिथ्या, निष्फल और दुःख का कारण है; क्योंकि सब जीवों के जीवन-मरण, सुख-दुःख स्वयंकृत व स्वयंकृत-कर्म के फल हैं। एक को दूसरे के सुख-दुःख, जीवन-मरण का कर्त्ता मानना अज्ञान है।

भगवान् महावीर ने कर्त्तावाद का स्पष्ट निषेध किया है। कर्त्तावाद के निषेध का तात्पर्य मात्र इतना ही नहीं है कि कोई शक्तिमान ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है; अपितु यह भी है कि कोई भी द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। किसी एक महान् शक्ति को समस्त जगत् का कर्त्ता-हर्त्ता मानना एक कर्त्तावाद है, तो परस्पर एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता मानना अनेक कर्त्तावाद।

पथिक हैं युगपुरुष श्री कानजी स्वामी; जिन्होंने वर्तमान जैन आध्यात्मिक जगत् को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

युगपुरुष उसे कहते हैं जो युग को एक दिशा दे, भ्रमित युग को सन्मार्ग दिखाए; मात्र दिखाए ही नहीं, एक वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करके जगत् को उस पर विचार करने के लिए बाध्य कर दे। यदि वह क्रान्ति आध्यात्मिक हो और अहिंसक उपायों द्वारा सम्पन्न की गई हो तो उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

कानजी स्वामी एक ऐसे युगपुरुष हैं, जिन्होंने अपने जीवन में तो परिवर्तन किया ही; साथ ही जैन जगत् में भी आध्यात्मिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी और बाह्य क्रिया-काण्ड में उलझे हुए समाज को भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित शाश्वत शान्ति की प्राप्ति का सन्मार्ग दिखाया। उन्होंने सोते हुए समाज को मात्र जगाया ही नहीं; वरन् उसे मानव-जीवन की सफलता एवं सार्थकता पर विचार करने के लिए झकझोर कर सचेत कर दिया एवं अपनी पूर्वाग्रहग्रस्त मान्यताओं पर एक बार पुनर्विचार करने के लिए बाध्य कर दिया है।

वे इस युग के बहुचर्चित महापुरुष हैं। चाहे पक्ष में हो चाहे विपक्ष में, जैन समाज में आज जितनी चर्चा उनके बारे में चलती है; अन्य किसी के बारे में नहीं।

जैन समाज के प्रसिद्ध तटस्थ विद्वान् सिद्धान्ताचार्य पंडित कैलाशचन्द्रजी वाराणसी, २६ जुलाई १६७६ के जैन सन्देश के सम्पादकीय में लिखते हैं :–

जन-समुदाय मंत्र-मुग्ध होकर लगातार महीनों सुनता है, आधा घंटा पहिले से आपकी सभा में उपस्थित रहता है।

राग से भिन्न आत्मा की गूढ़ चर्चा में इतनी विशाल जनता का इतना रुचिवंत होना अपने आप में एक आश्चर्य है, जो आपके युग-पोरुष को सहज ही सिद्ध कर देता है।

बाह्य क्रियाकाण्ड और वेष के नाम पर भोली जनता को प्रभावित कर लेना, 'धर्म खतरे में है' का नारा देकर उत्तेजित कर देना – एक बात है और गहन तात्त्विकचर्चा एवं अनुत्तेजित प्रवचन-शैली से जगत् में शान्त, आध्यात्मिक वातावरण पैदा करना – दूसरी बात। स्वामीजी ने क्रिया-काण्ड, मंत्र-तंत्र और वेश के बल पर नहीं; अजस्र ज्ञानाभ्यास के बल पर महावीर की वाणी के मर्म को उद्घाटित कर जगत् को जागृत किया है।

यद्यपि भगवान् महावीर से लेकर आज तक एक से एक बढ़कर हजारों समर्थ आचार्य, मुनिराज एवं विद्वान् हुए हैं जिन्होंने इनसे भी अधिक महान् कार्य किये हैं; किन्तु वे विभूतियाँ आज हमारे बीच नहीं हैं। वे सब हमारे लिए भगवान् महावीरवत् ही पूज्य एवं आदरणीय हैं।

महावीर की वाणी की रहस्योद्घाटक विद्यमान विभूतियों में स्वामीजी एक युगान्तरकारी विभूति हैं; जिन्हें अपने बीच पाकर आज जैन-जगत् गौरवान्वित है।

स्वामीजी नया कुछ नहीं कहते। वे तो भगवान् महावीर की वाणी में समागत एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों

कानजी स्वामी ने 'उत्तर नहीं देना ही सबसे बढ़िया उत्तर है' (No Reply is Best Reply) की नीति पर चलकर कर दिखाया। जो काम हम सब दौड़-दौड़ कर नहीं कर पा रहे हैं, वह काम उन्होंने एक जगह बैठकर मात्र दो समय प्रवचन एवं एक समय तत्त्वचर्चा करके कर दिखाया। उन्होंने सदाचारी, शान्त; पर दृढ़श्रद्धानी अनुशासित तत्त्वाभ्यासियों की एक लम्बी कतार खड़ी कर दी है – जिनमें बालक, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध पुरुष एवं महिलाएँ सभी हैं।

उनके अनुयायी तो उनके बताए मार्ग पर चलते ही हैं, पर जो लोग उनके जिन कार्यों की आलोचना करते हैं वे भी आज वही करने लगे हैं। शिविरों की आलोचना करने वाले शिविर लगा रहे हैं, समयसार पढ़ने को मना करने वाले समयसार पढ़ रहे हैं, मंडलों का विरोध करने वाले मंडल बना रहे हैं।

विरोध करने वालों का सदा यही हाल रहा है। एक समय जो लोग शास्त्रों को छपाने का विरोध करते नहीं थकते थे, वे आज धड़ाधड़ शास्त्र छपा रहे हैं।

समस्त युग पर जिसकी छाप पड़े, वही युगपुरुष है – इस अर्थ में आप सच्चे युगपुरुष हैं।

आज के युग में एक तो कोई ८७-८८ वर्ष की उम्र तक पहुँचता ही नहीं। कदाचित् कोई पहुँच भी जाय तो वह कानों से सुनता नहीं, उसे आँखों से दिखता नहीं, वह अर्द्धमृतकसम ही जीता है।

# पूज्य श्री कानजी स्वामी
# मूल्यांकन और उपलब्धियाँ

यह तो एक निर्विवाद सत्य है कि पूज्य श्री कानजी स्वामी इस सदी के एक आध्यात्मिक क्रांतिकारी महापुरुष हैं। दिगम्बर जैन समाज के विगत चार सौ वर्षों के इतिहास में कविवर पंडित बनारसीदासजी और महा-पंडित टोडरमलजी को छोड़कर कानजी स्वामी के अतिरिक्त और किसी ने इतनी विशाल आध्यात्मिक क्रान्ति नहीं की है।

मिथ्यात्व, विषय-कषाय आदि बहिर्द्रव्य के निरा-लम्बन से आत्मा में अनुष्ठान होना अध्यात्म है[1]। सुषुप्त वातावरण में उथल-पुथल मचा देने वाली जागृति को क्रान्ति कहते हैं और सत्यासत्य का निर्णय कर सही मार्ग पर दृढ़ निश्चय के साथ बढ़ता रहे उसे महापुरुष कहते हैं।

उपर्युक्त तीनों बातें पूज्य श्री स्वामीजी में पाई जाती हैं, अतः वे सच्चे अर्थों में महान क्रान्तिकारी आध्यात्मिक महापुरुष हैं। उक्त आध्यात्मिक क्रान्ति से आपने अपना पथ तो प्रशस्त किया ही; प्रवचनों के माध्यम से उक्त पथ को आलोकित कर जैन समाज में एक अभूतपूर्व क्रान्ति कर लाखों लोगों को आत्मार्थी बना दिया।

---

[1] परमात्मप्रकाश, अध्याय २, दोहा १५४ की टीका

## ब्रह्मचर्याश्रम

गुरुदेव के उपदेशों से प्रभावित होकर सैंकड़ों भाई-बहनों ने उपलब्ध विषय-कषायों को तिलाञ्जलि देकर आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया है। इनमें बहुत से भाई सपत्नीक ब्रह्मचर्य से रहते हैं। बहुत से बालब्रह्मचारी एवं बालब्रह्मचारिणी भी हैं। अभी वहाँ पूज्य श्री चंपा बहन व शांता बहन की छत्रछाया में ५७ ब्रह्मचारिणी बहनें रहती है। ७ बहनें बाहर रह कर धर्म-आराधना कर रही हैं। बहनों के लिए वहाँ एक 'कुमारिका ब्रह्मचर्याश्रम' भी है।

सभी ब्रह्मचारी भाई-बहन अपने-अपने खर्चे से रहते हैं। प्रायः सभी बहनें सम्पन्न घरानों की व उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। कुछ ग्रेज्युऐट बालब्रह्मचारिणी बहनों के नाम इस प्रकार है :-

निर्मला बहन भायाणी M.A.,B.T.; कोकिला बहन, सारा B.A.; सुमित्रा बहन भाईलाल B.A.; शारदा बहन संघाणी B.A.; पुष्पलता बहन झांझरी, उज्जैन B.A.; ज्योत्सना बहन, राजकोट B.A.; मालती बहन, भावनगर B.A.; सुबोध बहन, खण्डवा B.A., B.T.; ललिता बहन, जामनगर B.A.; इच्छा बहन, राजकोट B.A.; जिनमती बहन, खंधार B.A ; हेमलता बहन, राजकोट B.A.; मधुबहन जोबालिया B.A.

## जिनमंदिरों का निर्माण

सौराष्ट्र (गुजरात) में प्रायः दिगम्बर जिनमंदिर थे ही नहीं। जब पूज्य स्वामीजी के सदुपदेश से प्रभावित

([illegible] २४८२), [illegible] (२४८३), [illegible] (२४८५), [illegible] (२४८६), जेतपुर (२४८६), [illegible] (२४८६), [illegible]-कुण्डला (२४८७), [illegible] (२४८८), भोपाल (२४८९), [illegible] (२४९०), उज्जैन (२४९१), [illegible] (२४९२), जयपुर (टोडरमल स्मारक भवन, २४९३), उदयपुर (२४९३), मक्सी पार्श्वनाथ (२४९५), जलगांव (२४९६), कानोतलाव (२४९६), [illegible] (२४९८), रामपुरा (२४९८), [illegible] (२४९८), जांबुड़ी (२५००), [illegible] (२५००), जूनागढ़ (मानस्तम्भ, २५०१), मुंबई (मानस्तम्भ, २५०१), सनावद (२५०१)।

## सोनगढ़ की धार्मिक संस्थाएँ

पूज्य श्री कानजी स्वामीजी के पधारने के पूर्व सोनगढ़ में एक भी दिगम्बर जैन नहीं था, और न कोई धर्म-स्थान ही था। स्वामीजी को भी एक साधारण झोंपड़ी जैसे मकान में एक भाई ने स्थान दिया था। स्वामीजी के प्रताप से आज जंगल में मंगल होकर वहाँ करोड़ों की सम्पत्तियां खड़ी हो गई हैं और सोनगढ़ एक तीर्थधाम बन गया है तथा लगभग ३०० घर दिगम्बर जैनों के बस गये हैं। सोनगढ़ में आज अनेक संस्थाएँ प्रायः अपने निजी विशाल भवनों के साथ संचालित हैं, जिनकी वर्तमान लागत लगभग एक करोड़ रु० है। इनके नाम इस प्रकार हैं :—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर, खुशाल जैन अतिथि गृह, दि० जैन अतिथि सेवासमिति, दि० जैन श्राविकाशाला, गोगादेवी

इन यात्राओं के माध्यम से सारे भारत में गुरुदेव का संदेश फैल गया।

पहली यात्रा वि० सं० २०१२ में और दूसरी यात्रा वि० सं० २०२० में सम्पन्न हुई थी। इसके अतिरिक्त आपने एक यात्रा वि० सं० २०१५ में केवल दक्षिण भारत की भी की।

जिन तीर्थों की पूज्य स्वामीजी ने संघ सहित वंदनाएँ की हैं, उनमें से कुछ प्रमुख तीर्थ इस प्रकार हैं :–

सम्मेदशिखरजी, गिरनार, बड़वानी, पावागिरी, ऊन, सिद्धवरकूट, मक्सी-पार्श्वनाथ, बजरंगगढ़, थूवौनजी, चन्देरी, देवगढ़, सोरीपुर-बटेश्वर, अयोध्या, बनारस, चन्द्रपुरी, सिंहपुरी, राजगिरी, कुण्डलपुर, नालन्दा, पावागिरी, गुणावा, नवादा, चम्पापुरी, मन्दारगिरी, खण्डगिरी-उदयगिरी, आबू, तारंगा, गजपन्था, मांगीतुंगी, केसरियाजी, हूमच, कुन्दाद्री, मूलबिद्री, जैनबद्री (श्रवणबेलगोला), कारकल, वेणूर, कोन्नूरहिल, कुन्थलगिरी, एलोरा, अजन्ता, शिरपुर (अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ), मुक्तागिरी, रामटेक, मढियाजी, कुण्डलगिरी सिद्धक्षेत्र, द्रोणगिरी, खजुराहो, पपौराजी, आहारजी, चाँदखेड़ी, पदमपुरी, महावीरजी, हस्तिनापुर।

इन यात्राओं के बीच तथा स्वतंत्ररूप से भी धर्म प्रभावनार्थ जिन-जिन नगरों में गुरुदेव पधारे, उनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं :–

बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, इन्दौर, भोपाल, जयपुर, बैंगलोर, मद्रास, उज्जैन, खण्डवा, बड़ोदा, सूरत, सनावद, गुना, शिवपुरी,

चुकी है। मराठी भाषी लोगों की भी मांग आ रही है, अतः मराठी में भी प्रकाशन विचाराधीन है।

## सत्साहित्य प्रकाशन

स्वामीजी के सदुपदेशों से प्रेरणा पाकर देश के कोने-कोने से करोड़ों की संख्या में सत्साहित्य का प्रकाशन हुआ है, जिसका पूरा विवरण देना तो संभव नहीं है, किन्तु कुछ प्रमुख जानकारी निम्नानुसार है :—

| प्रकाशक | स्थान | प्रतियां |
|---|---|---|
| श्री कुन्दकुन्द कहान जैन शास्त्र माला | सोनगढ़ | २० लाख |
| श्री पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट | जयपुर | ७ लाख |
| श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी ग्रंथमाला | जयपुर | १ लाख |
| श्री पाटनी दि० जैन ग्रंथमाला | मारोठ | १५ हजार |
| श्री महावीर निर्वाणोत्सव प्रकाशन (बालोपयोगी) | सोनगढ़ | १½ लाख |
| श्री वीतराग सत् साहित्य प्रकाशक ट्रस्ट | भावनगर | २५ हजार |
| श्री दि० जैन मुमुक्षु मंडल | बम्बई | २५ हजार |
| श्री ब्र० दुलीचंद जैन ग्रंथमाला | इन्दौर | ८ हजार |
| श्री वीतराग-विज्ञान साहित्य प्रकाशन | आगरा | ६० हजार |

## शिक्षण शिविर

आत्मार्थी मुमुक्षुजनों की ज्ञानपिपासा की पूर्त्ति करने हेतु सोनगढ़ में वि० सं० १९९५ से शिविर लगना आरंभ हुए। विद्यार्थियों के लिए ग्रीष्मावकाश में तथा प्रौढ़वर्ग के लिए श्रावण मास में बीस-बीस दिन के शिविर प्रति

वैसे तो बारहमास प्रवचनकार सारे देश में जाते रहते हैं, किन्तु पर्यूषण में प्रवचनकारों की मांग विशेष हो जाती है। प्रतिवर्ष ७०-७५ प्रवचनकार पर्यूषण में सोनगढ़ की ओर से समाज के अत्यन्त आग्रहपूर्ण आमंत्रण आने पर सारे भारत में भेजे जाते हैं। सभी प्रवचनकार निःस्वार्थ भाव से ये सेवाएँ प्रदान करते हैं।

### पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ट्रस्ट के विशाल भवन का निर्माण पूज्य स्वामीजी के उपदेश से प्रभावित एवं आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी के प्रति भक्तिभाव से प्रेरित श्री सेठ पूरनचंद्रजी गोदीका के पूर्ण सहयोग एवं सद्प्रयत्न से 'पंडित टोडरमल स्मारक भवन' के नाम से जयपुर में हुआ है। इसका उद्घाटन सन् १९६७ में पूज्य स्वामीजी के द्वारा हुआ था। इसके अन्तर्गत तत्त्वज्ञान के प्रचार का बहुत भारी काम हो रहा है। हिन्दी भाषी उत्तर भारत में तत्त्वप्रचार का यह एक केन्द्र बन गया है।

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के नाम से यह एक स्वतंत्र रजिस्टर्ड ट्रस्ट है। इस ट्रस्ट की धार्मिक प्रवृत्तियों के संचालक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम. ए., पीएच. डी. हैं। पूज्य श्री स्वामीजी के सदुपदेश से प्रभावित होकर ही डॉक्टर साहब की रुचि तत्त्वज्ञान के प्रति आकर्षित हुई थी और वे तत्त्वज्ञान का प्रचार-प्रसार करना ही अपने जीवन का ध्येय बनाकर दिन-रात उसी में दत्तचित्त रहते हैं।

वे ही प्रशिक्षण के काम को सम्पन्न करते हैं और प्रमुख रूप से सहयोग देते हैं उनके ही अग्रज श्रीमान् पंडित रतनचंदजी शास्त्री, विदिशा। अब तक इनके दस शिविर – (१) जयपुर (२) विदिशा (३) जयपुर (४) आगरा (५) विदिशा (६) मलकापुर (७) छिन्दवाड़ा (८) कोटा (९) सोलापुर और (१०) ललितपुर में लग चुके हैं, जिनमें १४५७ धर्माध्यापकों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

११वाँ प्रशिक्षण शिविर १५ मई १९७७ से ३ जून १९७७ तक प्रान्तिज (गुजरात) में लगने जा रहा है।

उक्त शिविरों में प्रशिक्षण प्राप्त धर्माध्यापकों से जैन तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में बहुत बड़ा सहयोग मिल रहा है। इनसे हजारों विद्वान्, अध्यापक और कार्यकर्त्ता तैयार हो गये हैं जो भारतवर्ष के गाँव-गाँव में जैनतत्त्व का अलख जगा रहे हैं।

ये अध्यापक अपने-अपने गाँव में जाकर एक घंटे की रात्रिकालीन धार्मिक वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोल कर बालकों को तत्त्वज्ञान कराते हैं तथा उन्हें सदाचार एवं नैतिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित करते हैं। कई अच्छे प्रवचनकार भी बन गये हैं।

इस वर्ष से प्रवचनकारों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा रही है। प्रवचनकारों के लिए प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष सोनगढ़ में दि० ३०-८-७७ से दि० १४-९-७७ तक लगेगा। इसमें पर्यूषण या अन्य अवसरों पर प्रवचनार्थ बाहर जाने वाले प्रवचनकारों के साथ-साथ अपने-अपने

दी भी जाती है जो [illegible] नहीं । अतः धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए एक घंटे की रात्रिकालीन पाठशालाएं खोलने का निश्चय किया गया । परिणामस्वरूप ७-८ वर्ष पहले भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की स्थापना हुई । इस समिति ने पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित शिविरों में प्रशिक्षित अध्यापकों के माध्यम से गांव-गांव में रात्रिकालीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलने का क्रम आरम्भ किया । जो पाठशालाएँ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर न हों, उनके लिए यथासंभव अनुदान देने की व्यवस्था भी की गई ।

आज देश के कोने-कोने में २६३ पाठशालाएँ सुचारु रूप से चल रही हैं । इनमें हजारों वालक धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं । वहुत सी पाठशालाएँ आत्मनिर्भर हैं, वे अनुदान नहीं लेतीं ।

विभिन्न प्रान्तों में जव ये पाठशालाएं तेजी से खुलने लगीं तो उनकी व्यवस्था को संभालने के लिए एवं नवीन पाठशालाएँ खोलने के लिए प्रान्तीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समितियाँ -- मध्यप्रदेशीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति, उत्तरप्रदेशीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति, महाराष्ट्र प्रान्तीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति वनाई गई ।

प्रान्तों में भी यथासंभव जिलेवार समितियाँ गठित की गई हैं ।

से भी अधिक प्रतियां प्रकाशित कर चुका है और भी अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य तेजी से चल रहा है।

### श्री कुंदकुंद कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट

पूज्य स्वामीजी ने भारत के समस्त तीर्थों की दो-दो बार यात्राएँ की हैं। उनके साथ उनके अनेक भक्तों ने भी यात्राएँ कीं। उन यात्राओं के दौरान तीर्थ क्षेत्रों की स्थिति को देखकर उनके समुचित संरक्षण एवं विकास की भावना जागृत हुई।

जीवंततीर्थ जिनवाणी के प्रकाशन एवं सुरक्षा की आवश्यकता भी निरन्तर अनुभव की जा रही थी।

वीर निर्वाण संवत् २५०० में सोनगढ़ में परमागम मंदिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव पर आयोजित विद्वत् सम्मेलन में एक प्रस्ताव इस सम्बन्ध में भी पारित हुआ था। उस पर चर्चा होते समय उपस्थित समाज ने यह अनुभव किया कि तीर्थ सुरक्षा की समुचित व्यवस्था होनी ही चाहिये। उसी समय अपील करने पर डेढ़-दो लाख रुपये के दान की भी घोषणा हुई।

फलस्वरूप इस दिशा में गम्भीर विचार-विमर्श आरंभ हो गया और एक करोड़ रुपया ध्रुव-फण्ड में एकत्रित करने के संकल्प के साथ 'श्री कुंदकुंद कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट' की स्थापना का निर्णय लिया गया।

आवश्यक वैधानिक कार्यवाहियाँ होने के बाद गत वर्ष गुरुदेव की जन्म जयन्ती के अवसर पर २ मई १९७६ को गुरुदेव के सान्निध्य में समाज के सर्वमान्य नेता साहू

जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के सहयोग से एवं क्षेत्र कमेटी के सहयोग से तीर्थ सर्वेक्षण योजना के अन्तर्गत काम किया जा रहा है। एक सर्वेक्षण पार्टी पं० ज्ञानचंदजी जैन विदिशा के संयोजकत्व में तैयार की गयी है जो शीघ्र ही तीर्थों के सर्वेक्षण का काम आरंभ कर देगी। पंडितजी स्वयं एक मिष्ठभाषी प्रखर वक्ता हैं तथा उनके साथ सहयोग करने वाली ओवरसियर, फोटोग्राफर आदि की पूरी पार्टी एक मिनी-बस के साथ रहेगी।

इसी प्रकार साहित्य के शोध-खोज (Research) आदि के लिए भी पंडित उत्तमचंदजी, एम. ए., बी. एड. सिवनी के नेतृत्व में एक सर्वेक्षण पार्टी बनाने की योजना बन चुकी है। विश्वास है काम शीघ्र ही आरंभ हो जायगा।

जैन तत्त्वज्ञान एवं श्रमण-संस्कृति की सुरक्षा हेतु यह ट्रस्ट ऐसे विद्वान् तैयार करने की भी योजना बना रहा है कि जो शोध-खोज एवं जैन तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकें।

यह ट्रस्ट अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है, किन्तु भविष्य में इसके द्वारा बहुत बड़े-बड़े काम होने की आशा है।

## उपसंहार

और भी अनेक काम पूज्य स्वामीजी की प्रेरणा से सारे भारतवर्ष में हो रहे हैं, जिनका विस्तृत विवरण देना यहां सम्भव नहीं है।

यह सब गुरुदेव के उपदेशामृत का ही प्रभाव है अन्यथा नाम के भूखे इस युग में – यह कहाँ सम्भव है ? सामान्य श्रावक के भेष में आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर रहने वाले सैंकड़ों दम्पति भी इसके प्रमाण हैं । वहां सोनगढ़ में कोई भी व्यक्ति जमीकंद आदि अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करता नहीं मिलेगा और न कोई बीड़ी-सिगरेट-तम्बाकू आदि का उपयोग करता मिलेगा । रात्रि में भोजन करना तो दूर, बहुत से लोग रात्रि में पानी भी नहीं लेते । इस प्रकार उनका व उनके अनुयायियों का जीवन सदाचार से युक्त सात्त्विक जीवन है ।

इस प्रकार पूज्य स्वामीजी के प्रभाव से जो-जो उपलब्धियाँ समाज को अब तक प्राप्त हुई हैं उनका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का यह एक सामान्य प्रयास है । यह कहाँ तक सफल हुआ है, इसका निर्णय पाठक स्वयं करें ।

मेरा तो निवेदन है कि पाठक स्वयं सोनगढ़ जाकर अपनी आंखों से सब कुछ देखें, अपने कानों से गुरुदेव के वचनामृतों का पान करें और सोनगढ़ की उपलब्धियों से स्वयं परिचित हों, उनका मूल्यांकन करें तथा साथ ही गुरुदेव द्वारा बताए गये मुक्ति के मार्ग को समझकर, मानकर, अपनाकर सहजसुख और शांति प्राप्त करें ।

पूज्य स्वामीजी चिरकाल तक हमारे बीच में बने रहें और उनकी प्रेरणा से धर्म प्रभावना के नये-नये कार्य निरन्तर होते रहें तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष आध्यात्मिक वातावरण से आप्लावित हो उठे, इस पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ ।

(२)

निखिल विश्व पथ पाये—
हिय में करुणा का संसार समेटे
अपनी एक श्वास में रे जो
संशय-तम का मरण लपेटे
जिसकी प्रज्ञा के प्रताप से
कर्तावाद को थी हैरानी
अरे ! मतक को मिली चेतना
सुन जिसकी कल्याणी वाणी
अरे ! मुक्ति के सुन्दर पथ का
करता जो जय-घोप चला रे
पाखंडों के०

(३)

बोली दुनिया "अरे अरे रे !
मात-पिता का धर्म न छोड़ो
जिसमें तुमने जन्म लिया है
उस पथ से अब मुंह मत मोड़ो
हरी भरी सी कीर्ति-लता है
दिग् दिगंत में व्याप्त तुम्हारी
यह लो यह लो सिंहासन लो
लेकिन रक्खो लाज हमारी
अरे तुम्हारे इस निश्चय से
भूतल पर भूचाल मचा रे
पाखंडों के०

(६)

जिसको राह मिली, उसको
अब चाह रही क्या शेप बताओ
जिसको थाह मिली उसको
पर्वाह रही क्या शेप बताओ
उसने युग की धारा पलटी,
वह अध्यात्म-क्रांति का सृष्टा
एक दिव्य संदेश विश्व का
चेतन केवल ज्ञाता-दृष्टा
रे अणु-अणु की आजादी का
शंख-नाद वह फूंक चला रे
पाखंडों के०

(७)

अरे वीर के जन्म-दिवस पर
भूतल का अभिशाप मिट गया
अरे वीर के जन्म-दिवस से
एक नया इतिहास जुड़ गया
अंधकार में युग सोता था
घुटती थी जीवन की श्वासें
पानी में भी पड़े हुए थे
अरे! मीन युग-युग के प्यासे
तेरा पावन पुनर्जन्म यह
वसुधा का वरदान बना रे
पाखंडों के०

---